(6) यह भी जोड़ा जा सकता है कि आदेश 15 नवंबर को एस्टेट ऑफिस को प्राप्त हुआ था और उसके बाद सेक्टर 7 सी में मध्य मार्ग पर एक भूखंड याचिकाकर्ता के लिए आरक्षित किया गया था। श्री राधा किशन कपूर के हलफनामे से पता चलता है कि मध्य मार्ग पर सेक्टर 7-सी में साइट नंबर 17 से 44 पहले ही बनाई जा चुकी थी और इनमें से केवल 17 से 26 नंबर वाली साइटों को जारी किया गया था और नीलामी की गई थी। शेष भूखंडों में से, 27 नंबर का भूखंड जो नीलामी किए गए भूखंडों के बगल में है, याचिकाकर्ता के लिए आरक्षित किया गया है। यह स्थिति होने के नाते, इस निष्कर्ष पर पहुंचना सुरक्षित होगा कि उत्तरदाता की ओर से उच्च न्यायालय के आदेश की अवज्ञा करने का कोई इरादा नहीं था। वास्तव में, तथ्य यह है कि आदेश की प्राप्ति के तुरंत बाद नीलाम किए गए भूखंडों के बगल में स्थित भूखंड आरक्षित था, यह दर्शाता है कि आदेश पहले प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि भूखंड संख्या 26 और 27 के बीच बहुत अंतर नहीं है। यदि 27 नंबर वाले प्लॉट को आरक्षित किया जा सकता है, तो अन्य भूखंडों में से कोई भी आरक्षित हो सकता है यदि आदेश समय पर उत्तरदाता के संज्ञान में आया था।

(7) उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, मुझे लगता है कि यह मानने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि उत्तरदाता को आदेश के बारे में पता चला था और उसने जानबूझकर इसकी अवज्ञा की थी। इसलिए, मैं इस याचिका को खारिज करता हूं और सभी उत्तरदाताओं के खिलाफ नियम का निर्वहन करता हूं।

एन। के.एस.

सिविल विविध

न्यायमूर्ति एच. आर. सोढ़ी के समक्ष

डा बी आर चौहान- याचिकाकर्ता

बनाम

पंजाब विश्वविद्यालय और अन्य, उत्तरदाता

1969 की सिविल रिट संख्या 1589

30 अक्टूबर, 1969

पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर (1968), खंड I, अध्याय III- विनियम 2- सीनेट के तहत प्रोफेसर

या रीडर की नियुक्ति - क्या परिवीक्षा की शर्त लगाने का अधिकार है - ऐसी शर्त यदि लगाई जाती है - क्या मनमानी - वैधानिक निगम के नियमों द्वारा विनियमित सेवा के अनुबंध के नियम और शर्तें - ऐसा अनुबंध - क्या कानून की अदालत में लागू किया जा सकता है

अभिनिर्धारित किया कि सेवा शुरू में अनुबंध का मामला है और सेवा की अवधि की अवधि भी एक मालिक और उसके नौकर द्वारा तय की जानी है। कानून के सामान्य नियम के अनुसार, एक मास्टर को इसके विपरीत अनुबंध की अनुपस्थिति में एक अंतर्निहित अधिकार है, यदि वह कुछ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फिट नहीं पाया जाता है और उससे अपेक्षित मानक तक नहीं आता है, तो अपने कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त कर सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि, नियोक्ता एक कॉर्पोरेट निकाय है या एक निजी व्यक्ति है। एक कर्मचारी अपने नियोक्ता पर जोर नहीं दे सकता है कि उसे सेवा जारी रखनी चाहिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि परीक्षण पर वह उसे दी गई नौकरी के लिए अनुपयुक्त पाया जाता है। किसी विश्वविद्यालय द्वारा प्रोफेसर या रीडर की नियुक्ति के मामले में कानून का शासन अलग नहीं है जब तक कि कानून के बल वाला कोई क़ानून या नियम नियोक्ता को इस तरह के अधिकार से वंचित नहीं करता है। प्रोफेसरों और पाठकों की सेवा शर्तों से संबंधित विनियम विश्वविद्यालय के रास्ते में ऐसी कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, खंड 1, 1968 संस्करण के अध्याय III में विनियम 2 में निहित विशेष नियम, कुछ मामलों के संबंध में केवल वर्ग ए के अधिकारियों के नियमों और शर्तों को नियंत्रित करने वाले सामान्य नियमों के पूरक हैं, और उनमें से एक यह है कि सीनेट किसी भी नियम और शर्तों को लागू कर सकता है। नियमों के दो सेटों के बीच कोई टकराव उत्पन्न नहीं होता है, यदि सीनेट जो पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम के तहत सर्वोच्च प्राधिकरण है, और वैधानिक विनियमों के तहत वर्ग ए के अधिकारियों की सेवा के नियमों और शर्तों को निर्धारित करने की शक्ति रखता है, विनियमन 2 (आई) में विचार किए गए अनुसार अस्थायी नियुक्ति से पहले परिवीक्षा की शर्त लगाता है और कर्मचारी टीएचके के नियमित कर्मचारी के रूप में उपलब्ध लाभों का हकदार बन जाता है। कक्षा में विश्वविद्यालय। प्रत्यक्ष सक्षम प्रावधान के अभाव में या, दूसरे शब्दों में, जब सेवा विनियमों में परिवीक्षा की स्थिति के बारे में कोई नियम नहीं है, तो सीनेट को अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी शर्त लगाने से नहीं रोका जाता है, जबकि किसी भी प्लेरसन को अपनी सेवा में नियोजित किया जाता है, चाहे वह प्रोफेसर, रीडर या किसी अन्य क्षमता में हो। परिवीक्षा की शर्त लगाने को किसी भी नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अनुचित या मनमाना प्रयोग नहीं माना जा सकता है।

(पैरा 7)

अभिनिर्धारित किया गया कि सेवा का एक अनुबंध वह है जिसे विशेष रूप से कानून की अदालत में लागू नहीं किया जा सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सिविल कोर्ट में एक नियमित मुकदमा दायर किया जाता है या उचित रिट या निर्देश जारी करके अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय से छूट मांगी जाती है। अनिच्छुक नियोक्ता पर किसी कर्मचारी की सेवाओं को लागू करने के लिए कोई रिट या निर्देश जारी नहीं किया जा

सकता है। गलत बर्खास्तगी के लिए या अनुबंध की किसी भी शर्त के उल्लंघन के लिए उपाय, चाहे वे सेवा के नियमों और शर्तों से संबंधित हों, केवल नुकसान के लिए कार्रवाई के माध्यम से है। एक क़ानून द्वारा बनाए गए निगम के मामले में, एक कर्मचारी की सेवा के नियम और शर्तें कभी-कभी नियमों द्वारा विनियमित होती हैं। नियमों द्वारा प्रदान किए गए ऐसे नियमों और शर्तों के तथ्य से कोई फर्क नहीं पड़ता है और वे केवल सेवा के नियम और शर्तों का गठन करते हैं। यदि नियोक्ता के साथ एक समझौते के तहत समान शर्तें निर्धारित की गई थीं, तो उपाय केवल उनके उल्लंघन के लिए नुकसान के लिए मुकदमे के माध्यम से होता और केवल यह तथ्य कि उन्हें एक क़ानून के तहत बनाए गए नियमों में प्रदान किया गया है, यह पार्टियों के संबंधित अधिकारों में या आगे बढ़ाए जाने वाले उपायों के मामले में कोई बुनियादी बदलाव नहीं करता है। हालांकि, जब किसी कर्मचारी को वैधानिक दर्जा दिया जाता है और एक क़ानून होता है जो नियोक्ता पर कुछ दायित्वों को डालता है, तो यह केवल तभी होता है जब उन दायित्वों का पालन नहीं किया जाता है और एक क़ानून के प्रावधानों का उल्लंघन होता है कि एक कर्मचारी को यह घोषणा प्राप्त करने का अधिकार मिलता है कि उसकी सेवाओं को समाप्त करने का आदेश कानून में शून्य और अप्रभावी है और वह अभी भी सेवा में बना हुआ है। जब ऐसा मामला होता है, तो परमादेश की प्रकृति में एक रिट भी जारी की जा सकती है नियोक्ता को कानून के अनुसार कार्य करने और कर्मचारी को बहाल करने का निर्देश दिया जा सकता है। (पैरा 9 और 10)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत याचिका में अनुरोध किया गया है कि 21 जून, 1969 को आयोजित पंजाब विश्वविद्यालय के सिंडिकेट की बैठक में लिए गए निर्णय को रद्द करने के लिए एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए और याचिकाकर्ता को सूचित किया जाए। सं 9898-वीजेजे/एएसटी, दिनांक 21 जून, 1969 और सीनेट की दिनांक 27 जुलाई, 1969।

आनंद सरूप और आरएस मित्तल, अधिवक्ता। याचिकाकर्ता के लिए

उत्तरदाताओं नंबर 1 और 2 की ओर से वकील राजिंदर सच्चर और राज कुमार अग्रवाल

जे. एन. कौशल, वकील, उत्तरदाता नंबर 3 के लिए

निर्णय

यह रिट याचिका 27 जुलाई, 1969 को पंजाब विश्वविद्यालय के उत्तरदाता सीनेट द्वारा लिए गए निर्णय के खिलाफ निर्देशित है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को उक्त विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और विभाग के प्रमुख के रूप में पुष्टि नहीं की गई थी और पद को विज्ञापित किया जाना था। उत्तरदाता विश्वविद्यालय का गठन पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम, 1947 के तहत किया गया है, जैसा कि अद्यतन रूप से संशोधित किया गया है (इसके बाद अधिनियम कहा जाता है)। विश्वविद्यालय एक कॉर्पोरेट निकाय है।

(2) याचिकाकर्ता डॉ. बी. आर. चौहान 1954 में विधि विभाग में व्याख्याता के रूप में इस विश्वविद्यालय में शामिल हुए और फिर वर्ष 1963 में रीडर के रूप में पदोन्नत हुए। वर्ष 1968 में तत्कालीन प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष की सेवानिवृत्ति पर, पद का विज्ञापन दिया गया था। विज्ञापन की एक प्रति उत्तरदाता 1 के लिखित बयान के साथ अनुलग्नक आर 6 है। पुष्टि होने पर भविष्य निधि के लाभ के साथ 1,100-50/1,300-60-1,600 रुपये के ग्रेड में पद के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे। विज्ञापन में यह उल्लेख किया गया था कि चयन समिति द्वारा उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया जाएगा और यह नियुक्ति 1 अप्रैल 1968 से शुरू होने वाली पहली बार में एक वर्ष की परिवीक्षा पर होगी। याचिकाकर्ता उन आवेदकों में से एक था, जिन्हें 2 जून 1968 को चयन समिति द्वारा साक्षात्कार के बाद पद के लिए चुना गया था। सिंडिकेट, जिसमें विश्वविद्यालय की कार्यकारी सरकार अधिनियम की धारा 20 के तहत निहित है, ने चयन समिति की रिपोर्ट के संदर्भ में सीनेट को सिफारिश की कि याचिकाकर्ता को एक वर्ष की परिवीक्षा पर 1,100-50/1,300-60-1,600 रुपये के ग्रेड में प्रोफेसर और कानून विभाग के प्रमुख के रूप में नियुक्त किया जाए। यह भी सिफारिश की गई थी कि याचिकाकर्ता को सीनेट की मंजूरी के अधीन तुरंत विभाग का प्रभार लेने के लिए कहा जाए, और कुलपति को उक्त ग्रेड में उपयुक्त रूप से अपना वेतन तय करने के लिए याचिकाकर्ता के दावों को देखने के लिए अधिकृत किया जाए।

(3) चूंकि उस समय विभाग का प्रभार कोई नहीं संभाल रहा था, कुलपति उत्तरदाता ने याचिकाकर्ता को सीनेट द्वारा उनकी नियुक्ति की मंजूरी की प्रत्याशा में 24 जून, 1968 से तुरंत अपने नए कर्तव्यों को ग्रहण करने के लिए कहा। इस पत्र की एक प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक 'बी' है। सिंडिकेट की सिफारिश 26 जुलाई 1968 को सीनेट के समक्ष रखी गई थी, जो विश्वविद्यालय का सर्वोच्च प्राधिकरण है, और नियुक्ति प्राधिकारी भी है। 26 जुलाई, 1968 को निर्धारित सीनेट की बैठक की कार्यसूची की एक प्रति, जैसा कि सदस्यों को परिचालित किया गया है, अनुपत्र आर-II है। विभिन्न पदों और वेतनमानों में विभिन्न व्यक्तियों की नियुक्तियों से संबंधित एजेंडा और आइटम नंबर 33 में कई आइटम थे, याचिकाकर्ता उनमें से एक है और उसका नाम उस मद में सीरियल नंबर 15 पर दिखाई देता है। सिंडिकेट की कार्यवाही जो एजेंडे का एक हिस्सा थी, को अलग-अलग पैरा में विभाजित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालय की प्रक्रिया यह है कि सीनेट द्वारा विचार किए जाने वाले प्रत्येक विषय के खिलाफ उस विषय की विषय वस्तु के लिए एक संक्षिप्त संदर्भ दिया जाता है और सीनेटरों का ध्यान सिंडिकेट कार्यवाही के प्रासंगिक पैरा पर आमंत्रित किया जाता है ताकि वे जान सकें कि सिफारिशें क्या हैं। संबंधित पैरा को पढ़ा जाता है और सीनेट के समक्ष अनुमोदन के लिए रखा जाता है। जब भी सीनेट किसी पैरा या उसके भाग की सामग्री को अनुमोदित नहीं करती है, तो यह विशेष रूप से अपने संकल्प में कहा जाता है। सीनेट की बैठक में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1968 संस्करण, खंड 1 के अध्याय IV में निहित वैधानिक विनियमों में दी गई है। सभी प्रस्तावों को पेश किया जाना है और उनका अनुमोदन किया जाना है, लेकिन सिंडिकेट द्वारा प्रस्तुत किए गए और बैठक के नोटिस पर दर्ज किए गए

प्रस्ताव, जो दूसरे शब्दों में एजेंडा है, को प्रस्ताव और अनुमोदन की आवश्यकता के बिना स्वयं प्रस्ताव के रूप में माना जाता है। 26 जुलाई 1968 की सीनेट कार्यवाही की एक प्रति, उत्तरदाता 1 के लिखित बयान के साथ अनुलग्नक आर -12 के रूप में दायर की गई है और यह एक विशाल दस्तावेज है। कई पैराग्राफ हैं और इसके पैराग्राफ XVII में, विभिन्न नियुक्तियों से संबंधित आइटम 26 से 46, आइटम नंबर 33 हैं और याचिकाकर्ता का मामला उक्त आइटम के तहत क्रम संख्या 15 पर दिखाई देता है। इन कार्यवाहियों में हमारे पास यह है कि मद 26 से 46 को पढ़ा गया और सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया। सिंडिकेट के किन प्रस्तावों को अनुमोदित किया जा रहा था, इस संबंध में सिंडिकेट कार्यवाही के संबंधित पैरा को भी संदर्भ दिया जाता है। याचिकाकर्ता के मामले में, पैरा 13 प्रासंगिक है और इसे आइटम 33 के सीरियल नंबर 15 के रूप में संदर्भित किया जाता है और यह सिंडिकेट की सिफारिश का प्रतीक है कि याचिकाकर्ता को 1,100-50/1,300-60-1,600 रुपये के ग्रेड में एक वर्ष की परिवीक्षा पर नियुक्त किया जाए, और कुलपति को याचिकाकर्ता के दावे को देखने और इस ग्रेड में उसका वेतन तय करने के लिए अधिकृत किया जाए। सीनेट के प्रस्ताव के अनुसरण में, 28 दिसंबर 1968 को विश्वविद्यालय के वित्त और विकास अधिकारी से याचिकाकर्ता को संबोधित करते हुए नियुक्ति पत्र, अनुबंध आर -13 जारी किया गया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था, जिसमें उनके आवेदन का संदर्भ देते हुए बताया गया था कि सीनेट ने 26 जुलाई, 1968 को आयोजित अपनी बैठक में याचिकाकर्ता की प्रोफेसर और कानून विभाग के प्रमुख के रूप में नियुक्ति को मंजूरी दे दी थी। कुलपति द्वारा, और यह कि नियुक्ति एक वर्ष की परिवीक्षा पर होनी थी। पत्र में यह भी कहा गया था कि नियुक्ति विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के तहत शासित होगी।

(4) याचिकाकर्ता तब तक विभाग के प्रमुख के रूप में काम करता रहा जब तक कि सिंडिकेट ने 21 जून, 1969 को आयोजित अपनी बैठक में सीनेट को सिफारिश नहीं की कि याचिकाकर्ता को प्रोफेसर और कानून विभाग के प्रमुख के रूप में उनके पद पर पुष्टि नहीं की जाए और कुलपति को सीनेट की मंजूरी की प्रत्याशा में कार्य व्यवस्था करने के लिए अधिकृत किया जाए। कुलपति ने श्री ई. एच. बनर्जी, उत्तरदाता 3, जो पहले से ही विभाग में रीडर थे, को उसी विभाग के कार्यवाहक प्रमुख के रूप में नियुक्त किया। यह मामला 27 जुलाई, 1969 को आयोजित अपनी बैठक में सीनेट के समक्ष आया, जब सिंडिकेट की सिफारिशों को भारी बहुमत से अनुमोदित किया गया, जिसमें उपस्थित इकहत्तर सदस्यों में से केवल चार ने सिंडिकेट के प्रस्ताव के खिलाफ मतदान किया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की पुष्टि नहीं की गई। इसलिए वर्तमान रिट याचिका।

(5) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आनंद सरूप ने निम्नलिखित तर्क उठाए हैं -

1. सीनेट ने वास्तव में याचिकाकर्ता को परिवीक्षा पर नियुक्त नहीं किया था, हालांकि सिंडिकेट की

सिफारिश इस आशय की थी और यह संबंधित तारीख के सीनेट प्रस्ताव से पता चलता है।

2. यह कि अधिनियम की धारा 31 (2) (ई) के तहत विशेष वैधानिक विनियम बनाए गए हैं और पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1968 संस्करण, खंड 1 के अध्याय III, भाग सी में प्रकाशित किए गए हैं, और यह कि वे विश्वविद्यालय के पाठकों को जोड़ने के लिए प्रोफेसरों की नियुक्ति के मामले में एक पूर्ण कोड बनाते हैं। यह आग्रह किया जाता है कि नियुक्ति केवल इन विनियमों के तहत की जा सकती है जो परिवीक्षा पर नियुक्ति का प्रावधान नहीं करते हैं और इसलिए, सीनेट ने कानून के बल वाले ऐसे विनियमों के विपरीत कार्य करने का इरादा नहीं किया था, और यह वास्तव में कानूनी रूप से ऐसा नहीं कर सकता था और न ही यह माना जा सकता है कि उक्त विनियमों द्वारा कवर नहीं की गई नियुक्ति करके ऐसा करने का इरादा था। विद्वान वकील के अनुसार, परिवीक्षा पर नियुक्ति अपने आप में एक अलग वर्ग है जो उक्त विशेष विनियमों के नियम 2 (आई) के तहत अनुमेय दो प्रकार की नियुक्तियों से अलग है। विद्वान वकील के अनुसार परिवीक्षा पर नियुक्ति का विचार इन विशेष विनियमों द्वारा पूरी तरह से बाहर रखा गया है।

3. परिवीक्षा पर नियुक्ति की शर्त को शून्य माना जाना चाहिए और नियुक्ति को कानूनी रूप से सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित आयु तक की समय सीमा के बिना किया गया माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ता की पुष्टि करने से इनकार करने वाला आदेश, इस प्रकार, अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है।

4. विशेष वैधानिक विनियमों के विपरीत, याचिकाकर्ता के अवैध होने और अधिकार क्षेत्र के बिना होने की पुष्टि से इनकार करने वाली सीनेट की कार्रवाई, याचिकाकर्ता प्रोफेसर और कानून विभाग के प्रमुख के पद पर बहाली के माध्यम से राहत का हकदार है, जहां से उसे केवल विनियमन 2 (iv) में प्रदान किए गए कदाचार या अक्षमता के लिए हटाया जा सकता है।

(6) अब मैं संबंधित विवादों से निपटने के लिए आगे बढ़ सकता हूं। पहला विवाद बिना किसी तथ्य के है और इसे दूर किया जाना चाहिए। रिकॉर्ड पर मौजूद दस्तावेज और याचिकाकर्ता का आचरण इस बात पर कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति पहली बार में एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर की गई थी। यह विवादित नहीं है कि चयन समिति ने सिफारिश की थी कि नियुक्ति परिवीक्षा पर की जाए और इस प्रकार की सिफारिश सिंडिकेट द्वारा स्वीकार की गई थी जिसने 22 जून, 1968 को अपनी बैठक में इस पर विचार किया था। पूरा विवाद इस बात को लेकर है कि सीनेट की बैठक में क्या फैसला लिया गया। मेरे समक्ष यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता सीनेट की बैठक में उपस्थित था, जो कानून विभाग का प्रतिनिधित्व कर रहा था, जिसका वह 22 जून, 1968 के सिंडिकेट निर्णय के अनुसरण में पहले से ही प्रभार संभाल रहा था। बाद में उन्हें विश्वविद्यालय के वित्त और विकास अधिकारी के हस्ताक्षर के तहत नियुक्ति का एक औपचारिक पत्र भी जारी किया गया था, जिसमें यह भी सूचित किया गया था कि नियुक्ति एक वर्ष की परिवीक्षा पर होगी। यदि तथ्य अन्यथा थे और नियुक्ति वास्तव में परिवीक्षा पर नहीं थी, तो याचिकाकर्ता की पहली प्रतिक्रिया, एक उचित व्यक्ति के रूप में, विश्वविद्यालय के सामने विरोध करना होगा कि उक्त पत्र (अनुबंध आर -13) में यह गलत तरीके से कहा गया था कि उसे एक वर्ष की परिवीक्षा पर नियुक्तियां करनी थीं। यह समझ से परे है कि याचिकाकर्ता जो एक उच्च शिक्षित व्यक्ति है, कानून से परिचित है, पत्र में प्रयुक्त 'परिवीक्षा' शब्द के आयात को नहीं समझ पाया और यह महसूस नहीं कर सका कि एक वर्ष की समाप्ति पर उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती है। श्री आनंद सरूप का कहना है कि याचिकाकर्ता का आचरण प्रासंगिक नहीं है और वह परिवीक्षा से संबंधित पत्र के उस हिस्से को अनदेखा कर सकते हैं, क्योंकि सीनेट द्वारा कानूनी रूप से ऐसी कोई शर्त नहीं लगाई जा सकती है। मुझे डर है कि यह विवाद भी बलहीन है। जब सीनेट की मंशा का पता लगाना होता है, तो याचिकाकर्ता के पिछले या बाद के आचरण सहित सभी दस्तावेज और परिस्थितियां, विशेष रूप से जब वह सीनेट की बैठक में उपस्थित थे, सबसे अधिक प्रासंगिक हैं। इस संबंध में विद्वान वकील ने मुख्य रूप से सीनेट की कार्यवाही (अनुबंध आर -12) में आइटम 33 के उप-आइटम 15 पर भरोसा किया, जहां पहली बार में परिवीक्षा 4 पर नियुक्ति के बारे में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इन कार्यवाहियों की एक प्रति याचिकाकर्ता द्वारा अनुलग्नक 'सी' के रूप में भी दायर की गई है, लेकिन इसका अजीब हिस्सा यह है कि इस प्रति में 22 जून, 1968 की सिंडिकेट कार्यवाही के पैरा 12 और 13 के संदर्भ का अभाव है, जहां यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नियुक्ति परिवीक्षा पर होनी थी। उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने जोरदार आग्रह किया कि याचिकाकर्ता द्वारा चूक जानबूझकर इस न्यायालय को यह आभास देने के लिए की गई थी कि नियुक्ति परिवीक्षा पर नहीं थी, क्योंकि वह बहुत अच्छी तरह से जानता था कि पैरा 12 और 13 में, जिसे सीनेट द्वारा अनुमोदित किया गया था, याचिकाकर्ता की नियुक्ति का स्पष्ट उल्लेख था। जो भी हो, तथ्य यह है कि सीनेट की कार्यवाही में, याचिकाकर्ता से संबंधित सिंडिकेट मिनट्स के पैरा 13 का उल्लेख किया गया है, जिसमें

याचिकाकर्ता की परिवीक्षा पर होने के नाते नियुक्ति के तथ्य को स्पष्ट रूप से कहा गया था और इन सभी कार्यवाहियों को पढ़ा गया था और सीनेट द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया था। यह याचिकाकर्ता के आचरण से भी पुष्टि होती है, जिसने इस शर्त को शामिल करने वाले पत्र अनुबंध आर -13 पर कोई आपत्ति नहीं उठाई। बेशक विश्वविद्यालय के तहत सेवा के किसी भी वर्ग से संबंधित किसी भी विनियम में परिवीक्षा पर नियुक्ति के लिए कोई विशिष्ट नियम नहीं है, लेकिन जैसा कि उत्तरदाताओं द्वारा उनकी वापसी के पैरा 8 में कहा गया है, जिसका कोई खंडन नहीं है, विश्वविद्यालय की प्रथा हमेशा एक वर्ष की परिवीक्षा पर सभी नियुक्तियां करने की रही है। जब तक कि नियुक्ति प्राधिकारी ने अन्यथा निर्णय न लिया हो। इस संदर्भ में उत्तरदाताओं ने सीनेट की कार्यवाही के प्रासंगिक पैराग्राफ से एक उद्धरण अनुलग्नक आर-7 को रिकॉर्ड पर रखा है, जिसमें दिखाया गया है कि 4 दिसंबर को प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किए गए डॉ. छाबड़ा के मामले में एक वर्ष की परिवीक्षा की सामान्य आवश्यकता को माफ कर दिया गया था। 1965, और यह विशेष रूप से कहा गया था। अनुबंध आर -7 में, उपयोग की जाने वाली अभिव्यक्ति "एक वर्ष की परिवीक्षाधीन सेवा की सामान्य आवश्यकता है..... माफ कर दी जाए"। याचिकाकर्ता को स्वयं परिवीक्षा पर रीडर के रूप में नियुक्त किया गया था और विभाग के तत्कालीन प्रमुख की सिफारिश पर उसकी परिवीक्षाधीन अवधि को एक वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया था। प्रोफेसरों और पाठकों की नियुक्तियों के लिए विनियम समान हैं। यदि याचिकाकर्ता को प्रोफेसर के रूप में परिवीक्षा पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है, तो उसे रीडर के रूप में भी नियुक्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन दोनों बार उसने नियुक्तियों को स्वीकार कर लिया। विद्वान वकील द्वारा अपनाए गए सरल तर्क में एक पहाड़ को तिल की पहाड़ी से बनाया जा रहा है, जिसके अस्तित्व के बारे में तथ्य का सवाल उठाया गया है, जिसके वर्तमान रिकॉर्ड पर कोई संदेह नहीं हो सकता है। श्री आनंद सरूप का तर्क यह है कि पैरा 12 और 13 का संदर्भ केवल यह दिखाने के लिए था कि उन पैरा में बताए गए प्रस्ताव सिंडिकेट द्वारा प्रस्तुत किए गए थे और उन्हें औपचारिक रूप से प्रस्तावित करने और अनुमोदित करने की आवश्यकता नहीं थी जैसा कि सीनेट की बैठकों में पालन की जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित विनियमों के विनियम 14 में परिकल्पना की गई है। ऐसा हो सकता है लेकिन यह तर्क इस तथ्य पर ध्यान नहीं देता है कि सीनेट की कार्यवाही में एमएएम आइटम XVII के तहत यह कहा गया है कि आइटम संख्या 26 से 46 द्वारा कवर किए गए सिंडिकेट के प्रस्ताव, जिसमें याचिकाकर्ता से संबंधित आइटम शामिल थे, को सीनेट द्वारा पढ़ा गया और सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया। मेरी राय में, यह किसी भी संदेह से परे स्थापित है कि सीनेट ने परिवीक्षा के संबंध में शर्त सहित सिंडिकेट के पूरे प्रस्ताव को अपनाया। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता को एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था।

(7) याचिकाकर्ता की ओर से अगली दलील भी गलत है। विश्वविद्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा की शर्तों आदि को विनियमित करने के लिए, अधिनियम की धारा 31 (ए), (ई) और (एफ)

के तहत विनियम बनाए गए हैं और उन्हें विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1968 के अध्याय IV, भाग सी, संस्करण, खंड I में पाया जाना है। इन विनियमों के प्रयोजनों के लिए, कर्मचारियों को तीन वर्गों, ए, बी और सी में वर्गीकृत किया गया है। एक प्रोफेसर एक 'क्लास ए' कर्मचारी है। विनियम 4 निम्नलिखित शब्दों में है :-

> "4. विनियमों में अन्यथा किए गए प्रावधान के अनुसार, प्रत्येक कर्मचारी के वेतन और सेवा की शर्तों का निर्धारण निम्नलिखित के मामले में किया जाएगा-
>
> (a) वर्ग ए के कर्मचारी - सीनेट के साथ आराम करते हैं;
>
> (b) श्रेणी बी और सी के कर्मचारी सिंडिकेट के साथ आराम करते हैं।
>
> सीनेट या सिंडिकेट, जैसा भी मामला हो, के पास ग्रेड, त्वरित वेतन वृद्धि, भत्ते आदि की न्यूनतम राशि से अधिक शुरुआत को मंजूरी देने की शक्ति होगी, जैसा कि वह उचित समझता है।

रजिस्ट्रार और अन्य प्रशासनिक अधिकारियों के मामले में, पूरक विनियम विश्वविद्यालय कैलेंडर के अध्याय I में पाए जाते हैं, जबकि विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और पाठकों से संबंधित विनियम इसके अध्याय III में निहित हैं। केवल अध्याय III का विनियम 2 ही प्रासंगिक है और यह निम्नानुसार है:-

> "2. विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और पाठकों के मामले में सेवा की शर्तों से संबंधित निम्नलिखित विशेष नियम लागू होते हैं:
>
> (i) नियुक्ति प्रारंभिक सीमित अवधि के लिए की जा सकती है या यह सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित आयु तक समय-सीमा के बिना की जा सकती है।
>
> (ii) जहां सीनेट ने नियुक्ति की प्रारंभिक अवधि के बाद एक प्रोफेसर या रीडर को बनाए रखने का फैसला किया है, आगे की अवधि निर्दिष्ट किए बिना, पुनर्नियुक्ति सेवानिवृत्त होने की आयु तक समय-सीमा के बिना होगी।
>
> (iii) जहां नियुक्ति प्रारंभिक अवधि के लिए की जाती है, सीनेट ऐसी अवधि के अंत से पहले 31 मार्च से पहले 31 मार्च के बाद विचार नहीं करेगी कि नियुक्ति और नियुक्ति के जारी रहने का प्रश्न उस अवधि के अंत में समाप्त नहीं होगा जब तक कि सीनेट ने 31 मार्च से पहले ऐसा निर्णय नहीं लिया हो; और इस तरह के नोटिस में विफल रहने पर नियुक्ति को प्रारंभिक अवधि के अंत से एक और वर्ष के लिए नवीनीकृत माना जाएगा, इस नोटिस के साथ कि यह अगले वर्ष के अंत में समाप्त हो जाएगी।

(iv) किसी प्रोफेसर या रीडर के गलत आचरण या अक्षमता के मामले में, सीनेट के पास सिंडिकेट की सिफारिश पर उसे पद से हटाने की शक्ति होगी, बशर्ते कि सीनेट की विधिवत बुलाई गई बैठक में उपस्थित सीनेट के दो-तिहाई सदस्य उसे हटाने के लिए मतदान करें। यह प्रावधान विश्वविद्यालय कॉलेज के प्राचार्य के मामले में भी लागू होगा।

इस अध्याय में निहित प्रावधानों के अधीन रहते हुए, विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और पाठकों की सेवा की शर्तें ए कक्षा के अन्य अधिकारियों के समान होंगी।

प्रोफेसर या रीडर की नियुक्ति प्रारंभिक सीमित अवधि के लिए या सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित आयु तक की समय सीमा के बिना की जा सकती है। इस प्रकार प्रोफेसरों और पाठकों के बीच नियुक्तियों के दो वर्ग हैं, अर्थात्, (1) जहां नियुक्ति प्रभावी होने की अवधि सीमित है, और (2) एक नियमित नियुक्ति जो सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित आयु तक फैली हुई है। जैसा कि पक्षकारों के विद्वान वकील ने मेरे सामने स्वीकार किया, यह उनका सामान्य मामला है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रारंभिक सीमित अवधि के लिए नहीं की गई थी। इसलिए, नियुक्ति का एकमात्र प्रकार सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित आयु तक की समय सीमा के बिना किया जा सकता था और उत्तरदाता 3 के विद्वान वकील श्री कौशल स्वीकार करते हैं कि विश्वविद्यालय का इरादा याचिकाकर्ता को समय सीमा के बिना नियुक्त करना था, लेकिन एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर परीक्षण के बाद उसे उपयुक्त पाया गया था। इसलिए यह प्रश्न उठता है कि क्या विनियम 2(i) में उल्लिखित समय-सीमा के बिना नियमित नियुक्ति करने के लिए विश्वविद्यालय के पास खुला है और याचिकाकर्ता को परिवीक्षा पर पहली बार नियोजित किया गया है। याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क कि परिवीक्षा पर नियुक्ति अपने आप में एक वर्ग है और विनियम 2 (आई) द्वारा कवर नहीं किया गया है, को गंभीरता से आग्रह या विचार नहीं किया जा सकता है। श्री आनन्द सरूप चाहते हैं कि विनियमों में इस आशय के सक्षम प्रावधान को शामिल न किए जाने के कारण विनियम 2(i) को इस रूप में पढ़ा जाए कि किसी प्रोफेसर या रीडर को परिवीक्षा पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। सेवा प्रारंभ में अनुबंध का मामला है और सेवा की अवधि की अवधि भी स्वामी और नौकर द्वारा तय की जानी है। कानून के सामान्य नियम के अनुसार, एक मास्टर को अनुबंध की अनुपस्थिति में एक अंतर्निहित अधिकार है, यदि वह कुछ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फिट नहीं पाया जाता है और उससे अपेक्षित मानक तक नहीं आता है, तो अपने कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त कर सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि नियोक्ता एक कॉर्पोरेट निकाय है या एक निजी व्यक्ति है। एक कर्मचारी अपने नियोक्ता पर जोर नहीं दे सकता है कि उसे सेवा जारी रखनी चाहिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि परीक्षण पर वह उसे दी गई नौकरी के लिए अनुपयुक्त पाया जाता है। प्रोफेसर या रीडर की नियुक्ति के मामले में कानून का शासन अलग नहीं हो सकता है जब तक कि कानून के बल वाला कोई क़ानून या नियम नियोक्ता को इस तरह के अधिकार से वंचित न करे। प्रोफेसरों और पाठकों की सेवा शर्तों से संबंधित विनियम विश्वविद्यालय के मार्ग में ऐसी कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। विनियम 2

में निहित विशेष नियम, जैसा कि पहले संदर्भित किया गया है, कुछ मामलों के संबंध में केवल वर्ग ए के अधिकारियों के नियमों और शर्तों को नियंत्रित करने वाले सामान्य नियमों को पूरक करते हैं। उनमें से एक यह है कि सीनेट किसी भी नियम और शर्तों को लागू कर सकता है। मेरी राय में, नियमों के इन दो सेटों के बीच कोई टकराव उत्पन्न नहीं होता है, यदि सीनेट, जो अधिनियम के तहत सर्वोच्च प्राधिकरण है और वैधानिक विनियमों के तहत वर्ग ए अधिकारियों की सेवा के नियमों और शर्तों को निर्धारित करने की शक्ति रखता है, विनियमन 2 (आई) में उल्लिखित नियमित नियुक्ति से पहले परिवीक्षा की शर्त लगाता है और कर्मचारी नियमित कर्मचारी के रूप में उपलब्ध लाभों का हकदार हो जाता है। इस कक्षा में विश्वविद्यालय। इसे अलग तरीके से कहें, तो प्रत्यक्ष सक्षम प्रावधान के अभाव में या, दूसरे शब्दों में, जब सेवा विनियमों में परिवीक्षा की स्थिति के बारे में कोई नियम नहीं है, तो सीनेट को अपनी कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में ऐसी शर्त लगाने से नहीं रोका जाता है, जबकि किसी भी व्यक्ति को अपनी सेवा में नियुक्त किया जाता है, चाहे वह प्रोफेसर के रूप में हो, पाठक या किसी अन्य क्षमता में। बी. एन. नागराजन और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य (1) मामले में सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप के फैसले[1] को इस दृष्टिकोण के समर्थन में वैध रूप से सेवा में लगाया जा सकता है। मैसूर राज्य के राज्यपाल द्वारा सहायक अभियंताओं की नियुक्तियों के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई नियम नहीं बनाए गए थे, लेकिन राज्य सरकार ने नियुक्तियां कीं। यह माना गया था कि किसी सेवा के गठन या सृजित या भरे जाने से पहले भर्ती के नियम बनाना बिल्कुल आवश्यक नहीं था और राज्य सरकार अपनी सामान्य कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियुक्तियां कर सकती है बशर्ते उसके द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 का उल्लंघन न करे। तात्कालिक मामले की परिस्थितियों में, नागराजन के मामले (1) में तर्क को अपनाकर, यह भी कहा जा सकता है कि सेवा की किसी विशेष स्थिति के बारे में एक नियम की आवश्यकता सीनेट द्वारा किसी व्यक्ति को अपनी सेवा में लेते समय ऐसी शर्त लगाने के रास्ते में नहीं आ सकती है। किसी भी तरह से, परिवीक्षा की शर्त को लागू करना सीनेट या वास्तव में किसी भी नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा शक्ति का अनुचित या मनमाना प्रयोग नहीं माना जा सकता है। परिवीक्षा पर नियुक्ति के लिए किसी भी सेवा विनियम में कोई प्रावधान नहीं होने के बावजूद, परिवीक्षा पर नियुक्ति का विचार विश्वविद्यालय की नियुक्तियों के लिए विदेशी नहीं है। अध्याय IV में विश्वविद्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों की सेवा की सामान्य शर्तें आदि बताई गई हैं और उसके विनियम 45 में भविष्य निधि में कर्मचारी द्वारा किए जाने वाले अंशदान के संबंध में एक नियम निर्धारित करते समय एक परंतुक संलग्न है जो निम्नानुसार है -

> ‘‘बशर्ते कि परिवीक्षा पर नियुक्त व्यक्तियों के मामले में, विश्वविद्यालय का योगदान उनकी नियुक्ति की तारीख

[1] ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1942.

से पुष्टि होने पर उनके क्रेडिट में रखा जाएगा।''

''सक्रिय सेवा'' शब्द को उसी विनियम के विनियम 2 (iv) में परिभाषित किया गया है और इसका अर्थ है, अन्य बातों के अलावा, ड्यूटी पर बिताया गया समय। शब्द "ड्यूटी" में परिवीक्षाधीन या प्रशिक्षु के रूप में सेवा शामिल है, बशर्ते कि ऐसी सेवा के बाद बिना किसी विराम के पुष्टि की जाए। एक प्रोफेसर जो विभाग का प्रमुख है, उसे न केवल ज्ञान की उन्नति और प्रसार की दिशा में योगदान देना है, बल्कि संस्था के प्रमुख के रूप में संगठनात्मक और प्रशासनिक कार्य के लिए क्षमता दिखानी है। यह संभवतः एक स्पष्ट वैधानिक रोक के अभाव में इरादा नहीं हो सकता है कि विश्वविद्यालय के उत्तरदाता को उसे सौंपे जाने वाले काम में किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए खुला नहीं है। यह पुष्टि के बाद ही है कि एक प्रोफेसर या रीडर की सेवाओं को उसके सिद्ध कदाचार या अक्षमता को छोड़कर समाप्त नहीं किया जा सकता है। मैं इसे एक चौंकाने वाला प्रस्ताव मानता हूं कि यद्यपि याचिकाकर्ता को परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था और उसने नियुक्ति स्वीकार कर ली थी, फिर भी उसे इस रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता था और उसकी नियुक्ति को उसकी सेवानिवृत्ति की आयु तक वैध माना जा सकता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी पुष्टि की गई है या नहीं। विद्वान वकील का यह तर्क कि विनियम परिवीक्षा पर प्रोफेसर की नियुक्ति की अनुमति नहीं देते हैं, इसलिए खारिज कर दिया जाना चाहिए।

(8) यह तर्क कि याचिकाकर्ता द्वारा परिवीक्षा पर नियुक्ति स्वीकार करने के बावजूद, परिवीक्षा से संबंधित शर्त को शून्य माना जा रहा है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसमें कोई दम नहीं है। यह मानते हुए कि इस तर्क में कुछ दम था, याचिकाकर्ता का आचरण ऐसा है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय से किसी भी राहत का हकदार नहीं है। याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई इक्विटी नहीं है और यह एक अच्छी तरह से स्थापित नियम है कि किसी व्यक्ति को क्षतिपूर्ति और पुनरावृत्ति दोनों की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ता को उसी विनियम के तहत परिवीक्षा पर रीडर के रूप में नियुक्त किया गया था जिसके तहत उसे प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। उत्तरदाता विश्वविद्यालय द्वारा जारी विज्ञापन में कहा गया है कि नियुक्ति पहली बार में एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर होनी थी और याचिकाकर्ता ने उस विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन किया था। चयन समिति ने याचिकाकर्ता को परिवीक्षा पर नियुक्त करने की सिफारिश की और सिंडिकेट और सीनेट द्वारा उसी सिफारिश को अपनाया गया। याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि उसकी नियुक्ति एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर थी लेकिन याचिकाकर्ता ने उस पर लगाई गई इस शर्त पर कभी कोई आपत्ति नहीं जताई। वह पुष्टि का मौका लेते हुए बाड़ पर खड़ा हो गया, लेकिन जब इनकार कर दिया गया, तो वह पलट गया और एक आधारहीन दलील देना शुरू कर दिया, जिसमें आग्रह किया गया कि उसकी नियुक्ति वास्तव में परिवीक्षा पर नहीं थी और उसे कानूनी रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता था। इसमें

कोई संदेह नहीं है कि यह न्यायालय कानून के शासन को आगे बढ़ाएगा, लेकिन साथ ही संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत राहत भी न्यायसंगत है। जो कोई भी इस तरह की राहत की मांग करता है, उसे साफ हाथों से आना चाहिए, जो मुझे डर है कि याचिकाकर्ता के आचरण से झूठ बोला गया है। ऐसी परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है। यह हो सकता है कि बिना कोई कारण बताए उनकी पुष्टि से इनकार किए जाने के कारण उन्हें चोट लगी हो। यह न्यायालय विश्वविद्यालय के अधिकारियों के फैसले पर अपील में नहीं बैठ सकता है जब याचिकाकर्ता के किसी भी कानूनी अधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है। उनके पास पुष्टि करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था, न ही वह इस बात का कारण बताने के हकदार थे कि ऐसा क्यों नहीं किया जा रहा है।

(9) एकमात्र विवाद जो विचार के लिए बचा है, वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता उस पद पर बहाली के माध्यम से राहत का दावा कर सकता है जिसमें उसकी पुष्टि नहीं की गई है। अन्य विवादों पर मेरे निष्कर्षों को देखते हुए वास्तव में ऐसा कोई सवाल नहीं उठता है, लेकिन जैसा कि इस मुद्दे पर लंबी बहस हुई थी, मुझे लगता है कि मामले के इस पहलू पर भी एक राय व्यक्त करना आवश्यक है। याचिकाकर्ता के साथ उत्तरदाता विश्वविद्यालय का संबंध निस्संदेह मालिक और नौकर का था। ऐसे प्रत्येक संबंध को मूल रूप से एक समझौते से शुरू करना होता है जो कानून में लागू करने योग्य होना चाहिए या दूसरे शब्दों में एक वैध अनुबंध होना चाहिए। मास्टर एक व्यक्ति या किसी भी क़ानून के तहत अपंजीकृत या पंजीकृत व्यक्तियों का एक संघ हो सकता है। निगम जो क़ानून का प्राणी है, उतना ही किसी और के रूप में एक स्वामी है और इसके कर्मचारियों के साथ संबंध अभी भी एक स्वामी और नौकर के हैं जो अनुबंध की शर्तों द्वारा विनियमित हैं जिसके तहत इस संबंध को अस्तित्व में लाया गया था। ऐसे अनुबंध हैं जिन्हें विशेष रूप से लागू किया जा सकता है जबकि अन्य हैं जिनके प्रदर्शन का दावा नहीं किया जा सकता है और सेवा का अनुबंध वह है जिसे विशेष रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सिविल कोर्ट में एक नियमित मुकदमा दायर किया जाता है या उचित रिट या निर्देश जारी करके अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय से राहत मांगी जाती है। कोई रिट, या निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है जो कानून के सामान्य शासन के विपरीत है और यह है कि यह सामान्य रूप से अदालतों के लिए खुला नहीं है कि वे अनिच्छुक नियोक्ता पर एक कर्मचारी की सेवाओं को लागू करें। गलत बर्खास्तगी के लिए या अनुबंध की किसी भी शर्त के उल्लंघन के लिए उपाय, चाहे वे सेवा के नियमों और शर्तों से संबंधित हों, केवल नुकसान के लिए कार्रवाई के माध्यम से है। एक क़ानून द्वारा बनाए गए निगम के मामले में, एक कर्मचारी की सेवा के नियम और शर्तें कभी-कभी नियमों द्वारा विनियमित होती हैं। नियमों द्वारा प्रदान किए गए ऐसे नियमों और शर्तों के तथ्य से कोई फर्क नहीं पड़ता है और वे अभी भी केवल सेवा के नियम और शर्तों का गठन करते हैं। यदि नियोक्ता के साथ एक समझौते के तहत समान शर्तें निर्धारित की गई थीं, तो उपाय केवल उनके उल्लंघन के लिए नुकसान के लिए मुकदमे के माध्यम से होगा। केवल यह तथ्य कि उन्हें एक क़ानून के तहत बनाए गए नियमों में प्रदान किया गया है, पार्टियों

के संबंधित अधिकारों में या आगे बढ़ाए जाने वाले उपायों के मामले में कोई बुनियादी बदलाव नहीं करता है।

(10) यह कानून का एक स्थापित नियम है कि कर्मचारी की सेवा मास्टर की खुशी में है। यहां तक कि संघ या राज्य की सेवा में एक व्यक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल की खुशी के दौरान पद धारण करता है, जैसा भी मामला हो। संघ सरकार में या किसी राज्य के अधीन सिविल पदों पर आसीन लोक सेवकों को निश्चित रूप से सुरक्षोपायों की गारंटी दी गई है। ऐसे लोक सेवक के मामले में, एकमात्र संरक्षण यह है कि उसे उस प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त या हटाया नहीं जाएगा, जिसके द्वारा उसे नियुक्त किया गया था और न ही उसे उन आरोपों के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद उसे बर्खास्त या रैंक में कम नहीं किया जाएगा, जिसके लिए उसे दंडित करने की मांग की गई है। एक लोक सेवक को यह सीमित गारंटी कानून के सामान्य शासन को नहीं बदलती है जो न्यायालयों को अपने नियोक्ता पर किसी कर्मचारी की व्यक्तिगत सेवाओं को नहीं थोपने का आदेश देती है। इस नियम के लिए केवल अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवाद हैं जब,

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 में निहित गारंटी का उल्लंघन करते हुए एक लोक सेवक को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है:

2. औद्योगिक कानून द्वारा शासित उद्योग के एक कार्यकर्ता की अनधिकृत बर्खास्तगी है; और

3. एक सांविधिक निकाय ने एक क़ानून द्वारा लगाए गए अनिवार्य दायित्व का उल्लंघन किया है।

जब किसी कर्मचारी को सांविधिक दर्जा दिया जाता है और एक क़ानून होता है जो नियोक्ता पर कुछ दायित्वों को डालता है, तो यह केवल तभी होता है जब उन दायित्वों का पालन नहीं किया जाता है और एक क़ानून के प्रावधानों का उल्लंघन होता है कि एक कर्मचारी को यह घोषणा प्राप्त करने का अधिकार मिलता है कि उसकी सेवाओं को समाप्त करने का आदेश कानून में शून्य और अप्रभावी है और वह अभी भी सेवा में बना हुआ है। जब ऐसा मामला होता है, तो यहां तक कि परमादेश की प्रकृति में एक रिट भी जारी की जा सकती है जिसमें नियोक्ता को कानून के अनुसार कार्य करने और कर्मचारी को बहाल करने का निर्देश दिया जा सकता है। अन्य सभी मामलों में गलत तरीके से बर्खास्तगी या सेवा के किसी भी अनुबंध के उल्लंघन के लिए एक उपाय आम तौर पर एक सिविल कोर्ट में नुकसान के लिए कार्रवाई द्वारा होता है। इस संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम लिमिटेड की कार्यकारी समिति बनाम चंद्र किरण त्यागी (2) में सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप के नवीनतम फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है।[2] अंग्रेजी निर्णयों और सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न पूर्व निर्णयों की समीक्षा के बाद, उनके लॉर्डशिप द्वारा यह माना गया है कि भले ही किसी कर्मचारी के नियमों और शर्तों को नियंत्रित करने वाले कुछ वैधानिक नियमों का निगम द्वारा उल्लंघन किया गया हो,

[2] 1967 के सीए नंबर 552 का फैसला 8 सितंबर, 1969 को हुआ।

यह नहीं कहा जा सकता है कि वैधानिक दायित्व का उल्लंघन हुआ है और यह कोई घोषणा नहीं की जा सकती है कि गलत तरीके से बर्खास्त कर्मचारी निगम की सेवा में बना हुआ है। चंद्र किरण त्यागी ने राज्य भंडारण निगम की सेवा में प्रवेश किया जो कृषि उपज (विकास और भंडारण) निगम अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम XXVIII) के तहत बनाया गया एक वैधानिक निकाय था। क़ानून के तहत नियम बनाए गए थे और त्यागी को कुछ जांच के बाद सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, लेकिन उनकी सेवा के नियमों और शर्तों से संबंधित वैधानिक विनियमों के खंड 16 की अवहेलना में। उन्होंने यह घोषणा करने के लिए एक मुकदमा दायर किया कि उन्हें सेवा से बर्खास्त करने का आदेश अमान्य था और वह पूर्ण वेतन और परिलब्धियों के साथ बहाली के हकदार थे। उन्हें इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा उस न्यायालय में दूसरी अपील में आवश्यक राहत दी गई थी, लेकिन विशेष अनुमति से सर्वोच्च न्यायालय में अपील में, उच्च न्यायालय के फैसले और डिक्री को रद्द कर दिया गया था, जिससे घोषणा को अस्वीकार कर दिया गया था।

(11) श्री आनन्द सरूप ने मेरा ध्यान भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम सुनील कुमार मुखर्जी और अन्य (3) की ओर आकषत[3] किया है और इस बात पर बहुत जोर दिया है कि परमादेश जैसी रिट जारी की गई जिसके परिणामस्वरूप जीवन बीमा निगम के कुछ कर्मचारियों की बहाली हुई, जो उनके अनुसार, उत्तरदाता विश्वविद्यालय के समान ही एक निगमित निकाय था। उन्होंने एस आर तिवारी बनाम तिवारी का भी उल्लेख किया। जिला बोर्ड, आगरा[4] (4), जहां एक नौकर के रोजगार को समाप्त करने के लिए यूपी जिला बोर्ड अधिनियम (1922 का 10) के तहत शामिल यूपी जिला बोर्ड की कार्रवाई की अवैधता घोषित करने वाली एक रिट जारी की गई थी। ये दोनों मामले चंद्र किरण त्यागी के मामले (2) में देखे गए हैं, और प्रतिष्ठित हैं। इन मामलों में कर्मचारियों को वैधानिक दर्जा प्राप्त माना गया था और ऐसी स्थिति में, इस मामले को अनुबंध के तहत उत्पन्न दायित्वों के बजाय क़ानून द्वारा बनाई गई स्थिति के कारण कानूनी संबंध माना जाता था। इस फैसले पर बार में उद्धृत कई अधिकारियों की चर्चा का बोझ डालना व्यर्थ है, जबकि चंद्र किरण त्यागी के मामले (2) में उनके लॉर्डशिप द्वारा एक आधिकारिक घोषणा की गई है, जहां ऐसे मामलों में अदालतों के मार्गदर्शन के लिए सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं। इस मामले में फैसले से तत्काल मामला पूरी तरह से कवर होता है। उत्तरदाता विश्वविद्यालय एक क़ानून के तहत निगमित एक निकाय कॉर्पोरेट है। सांविधिक विनियम केवल प्रोफेसरों और पाठकों सहित विश्वविद्यालय के अधिकारियों की सेवा शर्तों से संबंधित हैं। यह मानते हुए कि ऐसे किसी भी विनियम का उल्लंघन हुआ है, पीड़ित पक्ष का उपाय यह नहीं है कि वह विश्वविद्यालय को किसी विशेष कार्यालय में उसे फिर से नियुक्त करने का निर्देश देने वाली रिट के मुद्दे के लिए इस न्यायालय का

[3] ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 847

[4] ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1680.

दरवाजा खटखटाए, बल्कि केवल नुकसान के लिए मुकदमे के माध्यम से। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा की गई बहाली की प्रार्थना गलत है।

(12) पूर्वगामी कारणों से, याचिका में कोई दम नहीं है, जिसे लागत के बारे में बिना किसी आदेश के खारिज कर दिया गया है।

आर.एन.एम.

अपीलीय सिविल

डी. के. महाजन और ए. डी. कोशल न्यायमूर्ति के समक्ष

करम सिंह, अपीलकर्ता,

बनाम

हरतेज बहादुर सिंह और अन्य, उत्तरदाता

1966 के लेटर्स पेटेंट अपील नंबर 297

6 नवंबर, 1969

पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम (1955 का 13वां भाग) - धारा 43 - पूर्वी पंजाब होल्डिंग्स (चकबंदी और विखंडन की रोकथाम) अधिनियम (1948 का 1) - धारा 23 - गांव में चकबंदी की कार्यवाही शुरू होने से पहले किरायेदार को अपनी किरायेदारी से बेदखल कर दिया गया - चकबंदी की कार्यवाही की गई और अंतिम रूप दिया गया - किरायेदार द्वारा धारा 43 के तहत आवेदन उसके बाद कब्जा वापस पाने के लिए - क्या रखरखाव योग्य है - क्या ऐसे किरायेदार के पास चकबंदी के तहत कोई उपाय है ढोंग।

यह माना गया है कि यदि चकबंदी कार्य शुरू होने से पहले किरायेदार को जबरन अपनी किरायेदारी में शामिल भूमि के कब्जे से वंचित कर दिया जाता है, तो पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 43 के प्रावधान तुरंत लागू हो जाते हैं और क्या उसके बाद कोई समेकन कार्य शुरू किया जाता है या नहीं, किरायेदार को उस धारा के प्रावधानों के तहत कलेक्टर को स्थानांतरित करने का अधिकार प्राप्त होता है या नहीं। यह धारा मकान मालिक द्वारा जबरन भूमि पर कब्जा करने के मामले में लागू होती है और इसलिए इस धारा के तहत किरायेदार द्वारा भूमि का कब्जा हासिल करने के लिए एक आवेदन चकबंदी की कार्यवाही किए जाने और अंतिम रूप दिए जाने के बाद भी सुनवाई योग्य है।

(पैरा 7 और 8)

यह माना गया कि एक किरायेदार जिसके स्वामित्व को मकान मालिक द्वारा विवादित किया गया है, उसे ईस्ट पंजाब होल्डिंग्स (समेकन और विखंडन की रोकथाम) अधिनियम, 1948 के प्रावधानों के तहत आवंटन का कोई अधिकार नहीं है, जब तक कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां उसके दावे का समर्थन नहीं करती हैं। यदि एक किरायेदार

अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय, वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके, और किसी अन्य उद्देश्य के लिया इसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

रवि अमितोज़
प्रशिक्षु न्यायिक
अधिकारी